प्रवचन नं. २३ गाथा-६ ता. २-७-७८ रविवार जेठ वदि-१२ सं.२५०४

`समयसार' छठवीं गाथा का भावार्थ। छठवीं गाथा हो गई। उसका भावार्थ। क्या कहना चाहते हैं ? कि यह वस्तु जो है आत्मा, वह द्रव्य अपेक्षा शुद्ध है। वस्तु के स्वभाव अपेक्षा वस्तु स्वयं शुद्ध है, पवित्र है, निर्मल है, अतीन्द्रियआनंद स्वरूप है, उसकी दृष्टि करने पर... उसकी दृष्टि करने पर अर्थात उसका आदर करनेपर उसे यह शुद्ध है - ऐसा ज्ञान में, ख्याल में आता है !

वस्तु तो शुद्ध है, यह त्रिकाल शुद्ध चैतन्यघन आनंदकंद है। मलिनता तो एक समय की पर्याय में दिखती है, वस्तु मलिन नहीं। वस्तु निर्मल, शुद्ध, पूर्ण, अखण्ड, अभेद, एकरूप वस्तु त्रिकाल है, यह तो शुद्ध है, पवित्र है अखण्ड है। परंतु किसे ? (जो) उसे जाने उसको जिसके ज्ञान में यह वस्तु आयी नहीं... यह चैतन्य प्रभु है पूर्णानंद, परंतु जिसके ख्याल में आई नहीं, उसे तो है ही नहीं, उसे है नहीं, अपितु वस्तु है, परंतु उसे यह शुद्ध है - ऐसा तो उसे है ही नहीं, क्योंकि दृष्टि में जिसे राग और पुण्य एवं पाप तथा दया-दान - ऐसा विकल्प जिसकी दृष्टि में वर्तता है उसे वस्तु शुद्ध है, यह तो श्रद्धा-ज्ञान में आयी नहीं। उसके श्रद्धाज्ञान में तो अशुद्धता आयी है पर्याय आई है और ***यह अशुद्धता पर्याय में आई है वह यथार्थ है, यथार्थ अर्थात अशुद्धपना है, पर्यायदृष्टि से अशुद्धता है, परंतु यह वास्तविक वस्तु नहीं। वास्तविक वस्तु तो, त्रिकाली ज्ञायक शुद्धचैतन्य मूर्ति, यह सत्य है।***

उसकी अपेक्षा से पर्याय है अवश्य, परंतु त्रिकाली की अपेक्षा से उस वस्तु को गौण करके, नहीं - ऐसा कहने में आया है। परंतु पर्याय है, राग है, अस्ति है यह, नहीं - ऐसा नहीं। परंतु उस पर्याय ऊपर दृष्टि करने से मिथ्यात्व होता है और भ्रमण चालू रहता है। इसलिये यह पर्याय ऊपर की दृष्टि... पर्याय होने पर भी रागादिक होने पर भी, उसकी दृष्टि का निषेध करके, वह वस्तु मुझ में नहीं - ऐसा निषेध करके... आहाहा ! वस्तु ज्ञायक, चैतन्यप्रभु सच्चिदानंद स्वरूप उसका है। आहाहा ! उसकी दृष्टि करने पर, उसको दृष्टि में यह आया, दृष्टि की तब यह ख्याल में आया, उसके लिये यह शुद्ध एवं पवित्र है। आहाहा ! जिसके ख्याल में यह वस्तु आई नहीं उसे है यह कहाँ से आया ? समझ में आया ? सूक्ष्मबात है मुख्यबात है यह... आहा ! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकीनाथ से कही हुयी और देखी हुई और जगत को दिखाने के लिए यह बात है। आहाहा ! प्रभु ! तुमने स्वयं अपने को देखा नहीं, तुम जो नहीं उसको देखा ! आहाहा !

पर्याय में राग और पुण्य एवं पाप का भाव, जो वस्तु में नहीं, उसको तुमने देखा और माना, यह तो परिभ्रमण का कारण है। आहाहा ! इस परिभ्रमण का अंत अर्थात कि जिसमें परिभ्रमण और परिभ्रमण का भाव (जिसमें) नहीं ऐसी यह चीज है प्रभु, तुम पूर्णानंद के नाथ सच्चिदानंद सत् हो। चिद्... आनंद, ज्ञानानंद प्रभु आत्मा। परंतु उसकी दृष्टि करे, उसे यह ज्ञानानंद है। उसकी दृष्टि नहीं करे उसे दृष्टि में वस्तु आयी नहीं, उसे तो यह सच्चिदानंद ध्रुव है ही नहीं। आहाहा ! कठिन काम बापू !

इसलिये यहाँ भावार्थ में कहते हैं कि **अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है वस्तु में नहीं।** समझ में आया ?

वस्तु जो त्रिकाली चैतन्यध्रुव, सच्चिदानंद स्वरूप जो शुद्ध है अखण्ड, इसमें उसे मलिनता नहीं, परंतु जो पर्याय में मलिनता होती है, यह अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। संयोगी चीज के लक्ष्य से वह संयोगी भाव उत्पन्न होता है। स्वभावभाव की दृष्टि से उसको स्वभाव दृष्टि में आता है, और संयोगी भाव के लक्ष्य से उसे संयोगी भाव लक्ष्य में आते हैं। अशुद्धता उसको दृष्टि में आती है, यह परद्रव्य के संयोग से **आती है, है ?** आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बातें बापू, यह मार्ग तो वीतरागस्वरूप है प्रभु ! यदि यह वीतरागस्वरूप न हो तब वीतरागता और सर्वज्ञता कहाँ से आयेगी ? वह कहीं बाहर से आये - ऐसा है ? आहाहा ! वीतरागस्वरूप प्रभु आत्मा है। परंतु उसे यह राग जो दिखता है वह संयोग जनित पर्याय अशुद्ध मलिन है। आहाहा ! वहाँ देखा ? `**अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है**' है। पर्याय में, अवस्था में बिलकुलराग है ही नहीं - ऐसा नहीं है राग भी है इस अपेक्षा से यह सत्य है, सत्य है अर्थात कि है। नहीं है - ऐसा नहीं है। असत् है - ऐसा नहीं। आहाहा !

(श्रोता :- राग भ्रम से उत्पन्न किया है ?) हाँ ? भ्रम, यह राग स्वयं उत्पन्न किया यही भ्रम है, स्वरूप में राग नहीं परंतु संयोग के लक्ष्य से उत्पन्न किया यह ही मिथ्यात्व और भ्रम है। आहाहा ! परंतु भ्रम भी है, भ्रम नहीं - ऐसा नहीं। आहाहा ! पर्याय में यह अशुद्धता की अवस्था है इसलिये भ्रम भी है। यह (रागादि) मैं हूँ - ऐसा भ्रम भी है और है इस अपेक्षा से भ्रम सत्य है। (वह) भ्रम त्रिकाल नहीं इसलिये असत् है। परंतु वर्तमान में है। बिलकुल नहीं है - ऐसा कोई कहे तब यह तो वस्तु की पर्याय को जानता नहीं, द्रव्य को तो जानता नहीं, आहाहा ! परंतु पर्याय को भी वह जानता नहीं।

अशुद्धता पर द्रव्य के संबंध से आती है संयोग अर्थात संबंध, संयोग (अशुद्धता) कराता नहीं। पर-द्रव्य का संयोग अशुद्धता करता नहीं, परंतु पर-द्रव्य के संयोग से

अशुद्धता स्वयं उत्पन्न करता है। समझ में आया ? ऐसी बात है बापू ! बहुत सूक्ष्म बात है। अनंत काल में आत्मा क्या वस्तु है, इसने वास्तविक जानने का प्रयत्न किया ही नहीं, शेष सभी बाहर से प्रयत्न कर-करके मर गया। आहाहा !

`वहाँ मूल द्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप होता ही नहीं' अर्थात क्या कहते हैं ? अशुद्धता परद्रव्य के संबंध से आती है, संबंध करता है इसलिये, हाँ ? परके कारण विकार होता है - ऐसा नहीं।

अब, `मूल द्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप अर्थात् विकाररूप होता ही नहीं' अर्थात राग अन्यद्रव्य (है) वह वास्तव में वस्तु नहीं। आहाहा ! अदंर भगवान आत्मा में जो कुछ पुण्य एवं पाप का भाव होता (है) निश्चय से वह अन्य द्रव्य है। तब स्वद्रव्य अन्य द्रव्यरूप होता नहीं। आहाहा ! वस्तु है वह तीनकाल में विकाररूप होती ही नहीं। आहाहा !

`वहाँ मूलद्रव्य तो' मूलद्रव्य लिया है न ? यह तो उत्पन्न हुई पर्याय कही, यह संयोग के संबंध से उत्पन्न हुआ अशुद्ध भाव है, परंतु मूलद्रव्य जो है, यह तो अन्यद्रव्यरूप मलिनता रूप होता ही नहीं। अन्यद्रव्य के संयोग से होनेवाला (भाव), भी यह वास्तव में तो अन्यद्रव्य है। वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा ! अब - ऐसा समझना (मुश्किल है)।

`मूलद्रव्य' जो मूल वस्तु है सत्, अनादि अनंत वस्तु के रूप में द्रव्य के रूप में, पदार्थ के रूप में, तत्त्व के रूप में, जो है यह भिन्नतत्त्वरूप होता नहीं। भिन्न तत्त्व अर्थात रागरूप यह (राग) अन्य द्रव्य है, यह भिन्न तत्त्व है। दया, दान, व्रत का विकल्प है, यह राग है, यह अन्य तत्त्व है, यह जीव तत्त्व नहीं। आहाहा ! वहाँ मूलद्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप अर्थात भिन्न तत्त्वरूप होता ही नहीं। आहाहा !

`मात्र परद्रव्य के निमित्त से निमित्त से अर्थात ? निमित्त से होता नहीं। परंतु निमित्त है' उसके लक्ष्य से हुयी है, इसलिये निमित्त से - ऐसा कहा है, परद्रव्य के निमित्त से अवस्था मलिन हो जाती है। अवस्था में मलिनता है, पर्याय में मलिनता है। वस्तु है तो निर्मलानंद प्रभु है। आहाहाहाहा ! वीतराग मूर्ति प्रभु चैतन्य तो अनादिअनंत यह वस्तु है, उसकी पर्याय में, परद्रव्य के निमित्त से अवस्था, उसकी हालत, वर्तमान दशा, मलिन हो जाती है। वस्तु नहीं। आहाहा ! उसकी वर्तमान दशा मलिन हो जाती है।

**`द्रव्यदृष्टि से तो द्रव्य जो है वही है'**, द्रव्यदृष्टि से हाँ। जो दृष्टि द्रव्य को देखे, उस दृष्टि से देखें तो, द्रव्य `जो है वही है' वह तो जो है वही है। आहाहाहा ! भाव सूक्ष्म है परंतु भाषा सरल है, कहीं बहुत कठिन नहीं। आहाहा !

इसे अनंत अनंतकाल हुआ, तत्त्व क्या है मूलस्थाई असली वस्तु क्या है ? आहाहा !

उस दृष्टि से तो द्रव्य `**जो है वही**' है `**जो है वही ही**' है, उसमें मलिता है ही नहीं जो है वही है, अनादि से। आहाहा ! द्रव्यदृष्टि से तो द्रव्य अर्थात वस्तु, द्रव्य अर्थात वस्तु, द्रव्य अर्थात यह पैसा नहीं हाँ ! आहाहा ! भगवान आत्मा वस्तु है न ? है न ? यह भूतकाल में नहीं थी - ऐसा है ? यह तो पहले से ही है वह तो अनादि से है, और वर्तमान (में) है और अनादि से है तथा भविष्य में है, है वह यह तो त्रिकाल है, आहा ! - ऐसा जो `द्रव्यदृष्टि से तो द्रव्य,' `जो है वही है, वह ही है' !

`**पर्यायदृष्टि से देखा जाय**' देखने में आये देखा ? पर्यायदृष्टि से - ऐसा देखने में आये `**तो मलिन ही दिखाई देता है**' मलिन है - ऐसा दिखता है। पर्याय से देखो तो मलिन है - ऐसा दिखता है। आहाहा ! यहाँ पर की दया पालना कि पर की हिंसा, यह बात तो इसमें है ही नहीं, कारण कि जो कर (नहीं) सकता उसकी बात क्या करना ? इसमें जो यह कर सकता है (तो) पर्यायदृष्टि (से) और द्रव्यदृष्टि (से), यह बात करते हैं। समझ में आया ?

मलिनपर्याय कर सकता है अज्ञानता से, पर्यायदृष्टि से, परंतु इससे पर का कुछ कर सकता है, यह बात तो यहाँ ली ही नहीं, कारण कि पर तो पररूप है उसे करे क्या ?

तुममें अब दो बातें है। यदि पर्यायदृष्टि से देखे तो मलिन है, यह भी ठीक है, द्रव्यदृष्टि से देखें तो यह तो शुद्ध जो है वह भी ठीक है। परंतु अब ठीक जो त्रिकाली वस्तु है यह दृष्टि में लेना... यह मलिनता पर्याय में जो है वह है फिर भी उसे गौण करके वह नहीं है - ऐसा कहकर और त्रिकाली जो (वस्तु) है उसे मुख्य करके निश्चय कहकर सत्य कहकर उसका आश्रय कराया है। आहाहाहा ! कहो आहाहा ! पर्यायदृष्टि से देखने में आये तो मलिन दिखता है।

`**इसप्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञायकत्व मात्र है**' देखा ? द्रव्य जो है वही है तो `द्रव्य' क्या है अब ? आत्म में अब लेना है न द्रव्य ? अन्यथा दूसरे द्रव्य तो है, परंतु यहाँ `द्रव्य' जो है वह क्या ? उसका स्वभाव ज्ञायकपना मात्र है द्रव्य। आहाहाहा ! जाननेवाला स्वभाव ध्रुवमात्र यह आत्मा प्रभु है। अनादि अनंत यह वस्तु है। द्रव्य से कहो कि ज्ञायकरूप से कहो, सभी एक वस्तु है। आहाहा ! परंतु `द्रव्य' है यह सामान्य हो गया इसलिए जब इसे `आत्मा' कहना है। तब उसे कहा कि यह तो आत्मा का स्वभाव `ज्ञायकत्व मात्र है'। द्रव्य तो है यह है, यह तो सामान्य बात कही। परंतु अब द्रव्य है यह वस्तु क्या चीज है ? तब कहते हैं कि द्रव्य तो परमाणु भी है, आकाश भी है, हाँ ? परंतु यह ज्ञायक मात्र है। ज्ञायक प्रभु

है यह। आहा ! जानने स्वभावरूप वह द्रव्य है। द्रव्य तो परमाणु है आकाश है, परंतु वह कहीं ज्ञायक स्वभाव स्वरूप नहीं, वह तो जड़स्वरूप है। आहाहा !

`इसीप्रकार आत्मा का स्वभाव'... जब द्रव्य जो है वही है, यह तो ज्ञायकता मात्र है। आहाहाहा ! जाननस्वभाव की मूर्ति... प्रभु है। जानन स्वभाव की पोटली स्वयं है। अकेला ज्ञायकभाव यह द्रव्य। समझ में आया ? मार्ग बहुत अलौकिक है बापू ! आहाहा ! प्रथम तो - ऐसा सत्य सुनने मिले नहीं (तब) किस दिन विचारे और करने जैसा वास्तविक है वह किस दिन करे ? हाँ ! आहाहा ! यह द्रव्य आत्मा का स्वभाव, त्रिकाली द्रव्य लेना है न ? इस द्रव्य का स्वभाव ज्ञायकता मात्र, बिलकुल राग और पुण्य तथा संसार अथवा उदयभाव उसमें बिलकुल है ही नहीं। आहाहा ! यह तो ज्ञायक मात्र प्रभु ध्रुव, जानन स्वभाव का कंद प्रभु, जानन स्वभाव का वज्रबिम्ब। आहाहाहा ! वह तो `ज्ञायकमात्र' ही प्रभु है।

`जिसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता' यह ज्ञायक की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता (है)। आहाहा ! क्योंकि सम्यक् अर्थात सत्य दर्शन, यह ज्ञायक त्रिकाली सत् है उसका दर्शन करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया ?

`और उसकी अवस्था पुद्गल कर्म के निमित्त से,** आहाहा ! **रागादिकरूप मलिन है'...** वह पर्याय है। पहले साधारण बात की थी, फिर द्रव्य ज्ञायक भावरूप बताकर, यह वस्तु ज्ञायकभाव द्रव्य है और उसकी पर्याय में... आहाहा ! **`उसकी अवस्था पुद्गलकर्म के निमित्त से' ***निमित्त से अर्थात उससे - ऐसा नहीं। निमित्त है पर उससे हुआ नहीं आहाहा ! मात्र स्वभाव से नहीं हुआ अतः वह निमित्त से हुआ है - ऐसा कहा जाता है।*** आहाहा !

`पुद्गल कर्म के निमित्त से रागादिकरूप मलिन...' यह राग-द्वेष विषयकषाय के भाव, ये सभी मलिन है। यह तो पर्याय है यह वस्तु नहीं कहीं। आहाहा ! मलिन जो कुछ पुण्य-पाप के भाव दिखते है, यह तो पर्याय है। ***द्रव्य ज्ञायक है, वह कहीं मलिन पर्याय में आया नहीं। आहाहा ! उसीप्रकार मलिन पर्याय, पर्याय (में) है वह ज्ञायक भाव में गई नहीं। आहाहा ! उसकी `मौजूदगी' पर्याय में पर्याय की पर्याय में रही हुई है*** और ज्ञायकता का `अस्तित्व' ज्ञायकरूप से स्वयं के कारण ज्ञायकता रही हुई है। आहाहाहाहा ! दोनों अस्तित्वरूप तो है। कहीं आकाश के फूल नहीं इसीप्रकार अशुद्धता है ही नहीं (- ऐसा नहीं) परंतु यह पर्याय में है, वस्तु में नहीं। आहाहा ! व्यापारियों को धंधे के कारण, फुरसत नहीं मिलती। प्रवीणभाई ! तुम्हारे बड़े भाई वगैरह सभी लोहे के धंधे में लग गये है।

यह वस्तु तो देखो, यह व्यक्तिगत बात नहीं, सभी की है। आहाहा ! क्या कहते

हैं भी ? प्रभु जो चैतन्य द्रव्य है, यह ज्ञायकरूप द्रव्य है - ऐसा कहते हैं। द्रव्य तो दूसरे हैं परमाणु आदि, यह तो चैतन्य ज्योति ज्ञायकभाव, ज्ञायकभाव ध्रुव ज्ञायकभाव इसरूप प्रभु है और उसकी अवस्था में संयोग जनित मलिनता भी है। परंतु यह मलिनता ज्ञायकभाव में गई नहीं, ज्ञायकभाव मलिनरूप हुआ नहीं। आहाहा !

'**पर्यायदृष्टि से देखा जाय तो**' देखो ? पर्याय है - ऐसा सिद्ध किया। '**पर्यायदृष्टि से देखा जाय तो मलिन दिखता है**' आहाहा ! वर्तमान में राग एवं पुण्य और पाप के भाव संयोग जनित हैं। यह हैं और पर्यायदृष्टि से देखा जाय तो यह हैं। आहाहा ! मलिन ही दिखता है। आहाहा !

अब, आया देखो !

'**द्रव्यदृष्टि से देखा जाय तो**' देखा जाय तो - ऐसा कहा। आहाहा ! उसमें भी पर्यायदृष्टि से देखा जाये तो... वर्तमान पर्याय से देखे तो मलिनता तो ज्ञानी को भी मलिनता पर्याय में दिखती है, इसलिये कहा, न कि 'स्वयं का मोह और पर के मोह के नाश के लिये'... पर्याय में मोह है... मोह अर्थात् यहाँ राग का अंश भी है, अस्ति है। पर्याय अपेक्षा देखे तो मलिनता का अस्तित्त्व है। वस्तु अपेक्षा देखें तो वस्तु में यह है ही नहीं। आहाहा ! भाषा तो सरल है, भाव तो जो है सो है। आहाहा ! मूल बिना, अभी (तो) दूल्हा बिना बारात इकट्ठी कर ली, दूल्हा नहीं फिर भी एकत्र कर ली। आत्मा, कौन द्रव्य है, पदार्थ, उसके ज्ञान और भान बिना... सभी करो व्रत एवं तप तथा भक्ति और मंदिर... तथा... आहाहा !

यहाँ कहते हैं, द्रव्य जो है वह तो ज्ञायकस्वरूप है, पर्याय से देखें तो मलिनता है। द्रव्यदृष्टि से देखने में आये, आहाहा ! उसे... द्रव्य जो ज्ञायकभाव है, उसकी दृष्टि से देखने में आये... उसकी दृष्टि से देखने में आये, आहाहाहा ! तब ज्ञायकता तो ज्ञायकता ही है। यह मलिन हुआ ही नहीं, वस्तु मलिन हुई ही नहीं। आहाहाहा !

(यह बात) कैसे बैठे ? यह मलिन पर्याय जो है तो पर्याय तो उसी द्रव्य की है, द्रव्य की है तब द्रव्य मलिन नहीं हुआ ? - ऐसा कहते हैं। वह रतनलालजी... पण्डितजी ? वह रतनलाल जी हैं न वे कहते हैं पर्याय अशुद्धता हुई तो द्रव्य भी अशुद्ध हो गया है। पर्याय अशुद्ध हुई है तब द्रव्य भी अशुद्ध हुआ है। - ऐसा कहते हैं समाचारपत्र में आता है। रतनलाल मुख्यतार। मुख्यतार, अरे ! भगवान ! ***प्रवचनसार की नौवीं गाथा में आता है न-शुभ के समय शुभ से तन्मय है, अशुभ के समय अशुभ से तन्मय है, शुद्ध के समय शुद्ध से तन्मय। पर्याय दूसरे की है और इसकी कहना है - ऐसा नहीं।*** आहाहा ! इतना बताना है। इससे द्रव्य तन्मय हो गया है अशुद्ध परिणामों के समय अर्थात् अशुद्धता के काल में ! तीनों काल में नहीं। आहाहा !

भगवान तो ज्ञायकरूपसे त्रिकाल स्थित है, इसलिये तुम्हें अवकाश है, यह है - उसे मानना और दृष्टि करने का तुम्हें अवकाश है, आहाहा ! - ऐसा जो ज्ञायक भाव त्रिकाल प्रभु है, तब तुम्हें अवकाश है उसे मानने का। हाँ - परंतु स्वयं शुद्ध त्रिकाली शुद्ध है - ***द्रव्य कभी भी अशुद्ध होता ही नहीं तीनों काल में, शुद्धरूप सिद्धरूप परिणमे वह पर्याय, अशुद्धरूप परिणमे यह भी पर्याय, शुद्धरूप पर्याय कहीं द्रव्य में प्रवेश नहीं हुई।*** आहाहाहा ! समझ में आता है ? - ऐसा स्वरूप है भाई, तुम्हारास्वरूप ही - ऐसा है प्रभु तुम्हें खबर नहीं। आहाहा !

'और तुझे दृष्टि करने को अवकाश है' क्यों ? यह तो ज्ञायकरूप रहा है, उसे मानना उसका तुम्हें अवकाश है। आहाहाहाहा ! यह तो ज्ञायकरूप प्रभु तो त्रिकालस्थित है। आहाहाहा ! इसलिये दृष्टि का विषय है यह तो यों का यों रहा हुआ है, रहा है इसलिये तुम दृष्टि कर सकते हो। आहाहाहाहा ! मलिन हो गया हो और शुद्ध मानना हो तो मुश्किल हो। यह तो पर्याय में मलिन है। आहाहाहाहा ! पहली बात में, सम्यग्दर्शन का ही ठिकाना नहीं जहाँ। आहाहा ! जिसकी भूमिका... सम्यग्दर्शन से धर्म की भूमिका उत्पन्न होती है, यह वस्तु ही जहाँ नहीं उसे यह सभी व्रत और तप करे उपसर्ग सहन करे एवं परिषह सहन करे परंतु यह सभी थोथा है, संसार का कारण है प्रभु ! आहाहा !

'द्रव्यदृष्टि से देखने में आये' यह द्रव्य तो ज्ञायकरूप है, इस दृष्टि से देखने में आये तो ज्ञायकता तो तुम्हें ज्ञायकता नजर आयेगी। आहाहाहा ! देखो ! यह ही आया ? (होमियोपेथी के डॉक्टर है) डॉक्टर होमियोपेथी समझ में आया ? क्या कहा ? कि जो आत्मा है यह ज्ञायकभाव, ज्ञायकस्वभाव, तो त्रिकाल है। उसकी वर्तमान दशा में मलिनता है वह तो अवस्थारूप पर्याय में मलिनता है वस्तु है तो ज्ञायकरूप त्रिकाल स्थित है। यह ज्ञायकभाव किसी दिन मलिन हुआ नहीं, ज्ञायकभाव किसी दिन अपूर्ण रहा नहीं, ज्ञायकभाव कभी भी पररूप होने से उसे अशुद्धता - ऐसा होता ही नहीं। आहाहा ! यह ज्ञायक भाव त्रिकाल है, उसे आवरण नहीं। आहाहाहा ! यह तो, ज्ञायकप्रभु है, वस्तु है न ? चैतन्यवस्तु है न ? ज्ञायकत्व स्वभाव, ज्ञायकस्वभाव... ज्ञायक स्वभाव ऐसी नित्यानंद प्रभु ध्रुव अनुत्पन्न एवं अविनाशी ऐसी वस्तु है न ? आहाहा ! इसलिये तुम्हें अवकाश है। क्योंकि ज्ञायकभाव, ज्ञायकरूप स्थित है, अतः उसकी दृष्टि करने का तुम्हें अवकाश है, ***उस ज्ञायक की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! यह मलिन हो गया हो तथा ज्ञायकरूप मानना हो, तो उसे सम्यग्दर्शन का अवकाश न रहे।*** आहाहा !

प्रभु तो अंदर चैतन्यस्वरूप जो नित्यानंद प्रभु, यह तो ज्ञायकरूप, तत्त्व अपेक्षा

ज्ञायकत्वरूप त्रिकाल है। इसकी वर्तमान दशा, हालत पर्याय उसमें मलिनपना यह पुण्यपाप का दिखता है। यह पुण्य-पाप की मलिनतारूप त्रिकालज्ञायक कभी भी हुआ ही नहीं है आहाहा ! क्योंकि इसमें पर्याय (की) मलिनता का प्रवेश नहीं, इसप्रकार वह मलिन पर्याय को ज्ञायकभाव छूता ही नहीं। आहाहा ! यह तो क्या बात, कठिन बात है। बापू !

यह ज्ञायकपना... द्रव्य दृष्टि से देखने में आये तो `ज्ञायकपना तो ज्ञायकपना ही है' `ज्ञायकपना' देखा ? आहाहा ! उसका स्वभाव जानना, स्वभावरूप है यह। सत्प्रभु जो आत्मा सच्चिदानंद। चिद् अर्थात ज्ञान और आनंद का सत् यह तो त्रिकाली ज्ञान एवं आनंद स्वरूप से ही विराजमान है। आहाहा !

द्रव्यदृष्टि से देखने में आये तो, यह कायम रहनेवाली वस्तु है। वर्तमानदशा में मलिनता है उसे न देखने में आये और कायम स्थिर तत्त्व जो है वस्तु ज्ञायक ध्रुव, उसे देखने में आये तो ज्ञायकभाव तो ज्ञायकरूप ही है। भाव लेना है न ? सत् का सत्पना, सत्प्रभु, उसका सत्पना ज्ञायकरूप उसका है। आहाहाहा ! सत् है - ऐसा जो भगवान आत्मा उसका ज्ञायकरूप वह इसका सत्त्व है भाव है। आहा ! उसका सत्त्व और यह इसका भाव... पुण्य-पाप के भाव दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध यह इसका सत्त्व नहीं, यह सत् का सत्त्व नहीं, सत् का यह कस (सार) नहीं। आहाहा !

सत् प्रभु है इसका कस तो ज्ञायकभाव है। अरे... अरे... अब ऐसी बातें... फुरसत नहीं मिले, फुरसत मिले नहीं। बापू ! यह करना पड़ेगा भाई ! यह निवृत्ति स्वरूप मौजूद है। आहाहा ! आहा !

उसमें आता है न ? `नयन के आलस से मैं देखा न नयन से हरि,' हमारी आंख की आलस से हमने भगवान को नहीं निहारा। हरि (अर्थात) आत्मा जो राग और द्वेष को हरण करनेवाला - ऐसा हरि प्रभु ! यह आंखों की आलस के कारण उसने देखा नहीं। आहाहाहा ! यह पूर्ण ज्ञायक प्रभु पर्याय एवं मलिनता के नजदीक स्थित है। आहाहा ! परंतु उसे देखने की फुरसत नहीं निकाली। आहाहा ! देखनेवाले को ज्ञेय मिले तब बाहर का देखने में रुक गया। आहाहा ! परंतु जिसकी सत्ता में दिखाई देता है, उसकी सत्ता देखने के लिये समय नहीं निकाला। समझ में आया ? आहाहाहा ! अब - ऐसा मार्ग !

इसमें करना क्या ? कुछ समझ नहीं पड़ती। आगम प्रमाण से कहो कि व्रत करो और दया पालों तथा पैसा दान में दो... मंदिर बनाओ - ऐसा कहो तो समझमें तो आये सही ? क्या समझना। यह तो राग है। इसमें क्या समझना ? और रागरूप

प्रभु किसी दिन हुआ नहीं, ज्ञायक। तो यह पर्यायरूप हुआ है ? आहाहाहा ! जो द्रव्य स्वयं रागरूप हो जाये तो द्रव्य अशुद्ध हो जाये अर्थात कि द्रव्य स्वयं रहे नहीं। आहाहा ! यह तो वस्तु जो है यह है।

ज्ञायकरूप प्रभु आत्मा... सभी आत्माओं के अंदर में विराजमान, ज्ञायकभाव है वह है अंदर ! आहाहाहा ! **`है'** उसकी दृष्टि करना है न प्रभु, आहाहाहा ! पर्याय की दृष्टि... ***जब यह द्रव्यदृष्टि यथार्थ होने के बाद पर्याय को देखे तो मलिनता दिखती है, वह ज्ञान का ज्ञेय है।*** आहाहा ! समझ में आया कुछ ? और - ऐसा भी जाने कि ***यह परिणमन हमारी पर्याय में है, हमारे द्रव्य में नहीं। परंतु पुण्य, पाप के भाव हैं, मुझ में होते हैं उनके परिणमन का कर्त्ता मैं हूँ नय ज्ञान (अपेक्षा) से।*** आहाहा ! परंतु वस्तु की दृष्टि से देखने पर ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव रूप रहा, उसे देखे उसे जाने (और) माने फिर उसकी पर्याय में मलिनता है उसका ज्ञान उसे सच्चा हो। आहा ! - ऐसा मार्ग - ऐसा कठिन काम। उपवास कर ले, चार छह आठ दश कर ले। शरीर क्रश हो जाये - ऐसा उपवास करे `उपवास' नहीं हो ? `उपवास' तो भगवान ज्ञायकभाव है उसके समीप में जाकर वसना (रहना)... पर्याय में उसका आदर करना... आहाहा ! और अतीन्द्रिय आनंद की दशा प्रगट हो - उसे `उपवास' कहते हैं। शेष सभी `उपवास' है।

राग में रुक कर, धर्म उपवास किया - ऐसा माने तो यह अनिष्ट वास है, भगवान ज्ञायकभाव है उसे तो देखा नहीं, जिसका महाअस्तित्व है, जिसकी विशाल सत्ता है, महान माहात्म्यस्वरूप जिसका है, उसे तो देखा नहीं, माना नहीं। आहाहा !

`द्रव्यदृष्टि से देखने में आये तो ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव ही `है' एकांत है ? हाँ निश्चयनय है वह सम्यक्एकांत है। समझ में आया ? आहाहाहा ! प्रभु अंदर विराजमान... जिसे केवलज्ञान हो, वह पर्याय कहाँ से आयेगी प्रभु ? कहीं बाहर से आयेगी ? यह अंदर में शक्ति और स्वभाव भरा है ज्ञायक भाव का। आहाहाहा !

**`वह ज्ञायकत्व तो ज्ञायकत्व ही है'** कहीं जड़रूप हुआ नहीं। अर्थात ? यह शुभ-अशुभ भाव, जो मलिन पर्याय है, अचेतन है, उसरूप ज्ञायकभाव हुआ नहीं। यह तो आ चुका है और टीका में ज्ञायकभाव शुभाशुभ भावरूप हुआ नहीं अर्थात जड़ हुआ नहीं। यह अंदर में आ गया है। आहाहा ! यह कहीं कथा नहीं, कहानी नहीं। यह तो प्रभु की `भागवत कथा है यह। आहाहा ! भगवत स्वरूप प्रभु अंदर है, आहाहा ! उसे प्राप्त करके भेंट करने की बातें है।

पामरता के आलिंगन में रुका है प्रभु ! प्रभुता की भेंट करो एकबार। आहाहा ! तुम्हारी पामरता नष्ट हो जायेगी। आहाहा ! सारी समाज को - ऐसा उपदेश है ?

बापू, समाज तो आत्मा है न अंदर प्रभु है न ! यह शरीर तो जड़ मिट्टी (तो यह) है। `जाननेवाले को बताना है' जाननेवाले को बताते है कि तुम तो ज्ञायकपनेरूप कायम रहे हो न। आहाहा !

हमारे सामने देखकर तुम सुनते हो एवं जो राग होता है यह तो पर्याय में होता है, तुम्हारा ज्ञायकभाव है, वह कभी भी पर्यायरूप रागरूप हुआ ही नहीं। आहाहाहा ! समझ में आया ?

`कहीं जड़पने हुआ नहीं' अर्थात ? शुभ-अशुभ भाव वह तो जड़ हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प जो उठे उसमें चैतन्य के, ज्ञायकपने के अंश का भी अभाव है इसमें पूरे ज्ञायकभाव का तो अभाव है, क्या कहा ? यह दया, दान, व्रतादि के परिणाम में ज्ञायक का तो अभाव है परंतु उसके एक अंश (का) भी उसमें अभाव है। जो सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की पर्याय इसमें जो भगवान आत्मा ज्ञात हुआ ऐसी पर्याय का भी राग में अभाव है, ज्ञायक का तो राग में अभाव है। आहाहा ! अरे, ऐसी बात कहाँ मिले भाई ? आहाहा !

`जड़रूप हुआ नहीं' आहाहा ! अर्थात ? जो कुछ शुभभाव कि अशुभभाव होते है, यह तो इसमें चैतन्य का, ज्ञायकभाव का तो अभाव है, परंतु ज्ञायकभाव की जो श्रद्धा ज्ञान आदि की निर्मल पर्याय होती है, उनका भी इसमें अभाव है, आहाहाहा ! इसलिये वह जड़रूप हैं। आहाहा ! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का स्मरण यह सभी राग वह जड़ हैं। आहाहाहा ! भगवान चैतन्य ज्ञायकरूप है वस्तु जो ज्ञायकरूप है, वह तो रागरूप हुई नहीं, यह राग में आयी नहीं, परंतु ज्ञायक की श्रद्धा ज्ञान की किरण जो सत्य का विष्फोट, उस किरण का भी राग में अभाव है। आहाहाहा !

इसलिये कहते हैं कि जो भाव... पंचमहाव्रत के भाव कहलाते है, भगवान का स्मरण कहलाये, उस भाव को तो यहाँ जड़ कहा है। आहाहा ! यह जड़ से, चैतन्य का ज्ञायक का ज्ञायकत्व प्रगटे ? वह ज्ञायकभाव नहीं था ? वह प्रगटे ? ज्ञायकभाव तो है ही। ज्ञायकभाव के स्वभाव का सत्कार और प्रतीति तथा अनुभव से उसका चैतन्यभाव प्रगटे। यह रागरूप क्रियाकाण्ड के परिणाम से प्रभु न प्रगटे। आहाहा ! - ऐसा (समझना) बहुत कठिन काम है।

चैतन्य ज्ञायकस्वभाव तो कायम रहनेवाला प्रभु द्रव्य है, परंतु उसे माननेवाली जो दृष्टि है, कि जाननेवाला जो ज्ञान है, उसे जाननेवाला ! ऐसे ज्ञान का अंश भी इस शुभराग में नहीं। आहाहा ! इसलिये शुभाशुभ राग को जड़ कहा गया है। आहाहा !

`यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है' पर्याय नहीं - ऐसा नहीं, पर्याय है

परंतु यहाँ द्रव्यदृष्टि को, द्रव्य की दृष्टि कराने को, ज्ञायकभाव की जो दृष्टि सत्य है, सत्य का स्वभाव है उसकी सत्य दृष्टि कराने को... आहाहा ! द्रव्यदृष्टि को मुख्य करके कहा है, मुख्यप्रधान करके मुख्य करके।

`**जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद है**' जो गुणस्थान के, चौदह गुणस्थान है, यह तो अशुद्धनय का, व्यवहारनय का विषय है। यह वस्तु में नहीं। आहाहाहा ! चौदह गुणस्थान हाँ। पहला गुणस्थान दूसरा, तीसरा, चौथा, चौदहवां, यह तो अशुद्धनय का विषय है। पर्याय का विषय कहो कि अशुद्ध का कहो अथवा व्यवहार का कहो, तीनों एक है। `जो प्रमत्त और अप्रमत्त के भेद है'... मलूगाथा में अप्रमत्त प्रमत्त था। `णवि होदि अपमत्तो ण पमत्तो' इसप्रकार।

(श्रोता :- आचार्य, स्वयं से कहते हैं) फिर यह सामान्य समझाया, वह प्रमत्त पहले होता है न ? प्रमत्त पहले होता है पहले से छठवें में और अप्रमत्त सातवें से चौदहवें गुणस्थान की धारा (है न) अर्थात उसे इसप्रकार कहा। यहाँ समझाने की अपेक्षा उसे प्रमत्त में कहा अप्रमत्त के भेद नहीं प्रभु, ज्ञायक भावरूप विराजमान वह शुभाशुभ भावरूप हुआ नहीं। जड़रूप हुआ नहीं इसलिये प्रमत्त-अप्रमत्त का भेद यह वस्तु में नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

लोगों को तो कहानी हो तो कुछ समझ में भी आये। एक राजा था और एक रानी थी रानी रूठ गई और राजा मनाने गया न ? हाँ ? घर पर होता हो ऐसी बातें करे तो उसे समझ में आये। उसके घर में होता हो। अरे ! बापू यह तो तुम्हारे घर में किसी दिन (ज्ञायक में) होता नहीं (कभी भी) `पर्याय में, (होता है) ऐसी बात है' यह तो। आहाहाहा !

भगवान आत्मा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ पुकारते हैं कि हम जो सर्वज्ञ हुये, यह सर्वज्ञतामें से सर्वज्ञ स्वभावमें से सर्वज्ञ हुए हैं... कहीं सर्वज्ञता कुछ बाहर से आई नहीं। आहाहा ! इसीप्रकार तुम्हारा गुण ही सर्वज्ञ स्वभाव है। यह सर्वज्ञस्वभाव स्वयं है। यह कभी भी रागरूप कि अल्पज्ञरूप हुआ ही नहीं। आहाहाहाहा ! तुम्हारा जो सत्त्व है, ज्ञायकपन `ज्ञपना' सर्वज्ञपना यह कभी भी `अल्पज्ञरूप हुआ नहीं', तब फिर रागरूप तो हो कहाँ से ? आहाहा ! ***वह तो परद्रव्य से संयोगजनित पर्याय है। शुभ-अशुभ भाव नहीं और प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं यह दोनों पर्याय नहीं, इसलिये भेद नहीं। इसलिये यह भेद परद्रव्य के संयोग जनित है।*** परद्रव्य के संयोग के लक्ष्य से हुआ है। परद्रव्य के संयोग जनित, संयोग ने उत्पन्न कराया है - ऐसा नहीं। फिर भी संयोगजनित (अर्थात कि) संयोग के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ है। आहाहा !

अब - ऐसा उपदेश याद किस प्रकार रहे ? एक घण्टा - ऐसा सुनो न बापू,

तुम आनंद केवलज्ञान के धनी हो नाथ ! तीनकाल, तीनलोक को जानो नाथ ! ऐसी तुम्हारे में शक्ति पड़ी है। आहाहा ! तब क्या ऐसी साधारण बात को न जान सके ? - ऐसा न सोचना भाई - ऐसा नहीं हो, समझ में नहीं आता यह कहने में कलंक लगता है प्रभु ! आहाहा ! यह तो ज्ञायकभाव का पिण्ड है न। वह कहे कि मुझे समझ में नहीं आये, पर्याय में नहीं समझे ! अरे आहाहा !

प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद है, यह तो परद्रव्य के संयोग से उत्पन्न हुयी पर्याय है। यह अशुद्धता... पर्याय में, हालत में, अवस्था में बदलती हलचल दशा में अशुद्धता है। नहीं बदलती स्थिर ध्रुव वस्तु में वह नहीं। ज्ञायक भाव न चलता न हिलता, स्थिर ध्रुव। आहाहा ! `उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्' है न ? ध्रुव है वह चलता हिलता नहीं, परिणमता नहीं। आहाहा !

यह त्रिकाली वस्तु है, उसकी दृष्टि की अपेक्षा से, उसकी दृष्टि की अपेक्षा यह अशुद्धता वह संयोग जनित विकार है, वह द्रव्य दृष्टि में गौण है, मुख्य नहीं। भेद में रखा, है अवश्य। तलहटी में रखो, इसप्रकार ऊपर चढ़ना है तो तलहटी साथ में नहीं आये। आहाहा !

इस द्रव्यदृष्टि में मलिनता गौण है। अभाव है - ऐसा नहीं हाँ। मलिनता नहीं तो संसार भी नहीं, दुःख भी नहीं, विकार भी नहीं। आहाहा ! - ऐसा नहीं। है, परंतु द्रव्यदृष्टि वस्तु ज्ञायकभाव, उस दृष्टि की मुख्यता से, उस अशुद्धता को गौण करके नहीं - ऐसा कहने में आया है। गौण करके भेट में गर्भित करके, ऊपर जाना है न तलहटी नीचे रह गई, परंतु यह है अवश्य...।

इसप्रकार राग से भिन्न होकर, स्वरूप की दृष्टि करने को और उसमें स्थिर होने में, पर्याय को गौण करे तब उसमें दृष्टि उसकी स्थिरता होती है। आहाहा ! है ? गौण है यह व्यवहार है, दूसरे प्रकार से कहें उसे, द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से वस्तु जो त्रिकाल ज्ञायक प्रभु है वह मुख्य है। उसकी दृष्टि में अशुद्धता है यह व्यवहार है। त्रिकाली ज्ञायक भाव वह निश्चय है। यह गौण है और वह मुख्य है। यह व्यवहार है, वह त्रिकाली निश्चय है। आहाहा !

अभूतार्थ है। नहीं - ऐसा कहा। अ-भूत, पर्याय नहीं। गौण करके, भगवान त्रिकाली ज्ञायकभाव को मुख्य करके `**है**' निश्चय - ऐसा कहा और गौण करके व्यवहार कहकर नहीं - ऐसा कहा, पर्याय बिलकुल नहीं, इसप्रकार अशुद्धता - ऐसा नहीं और असत्यार्थ है, झूठा अशुद्धता असत्यार्थ है, उपचार है, पर्याय में.... (है) आहाहा ! विशेष व्याख्या आयेगी... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)